

कृषक आंदोलन में गांधी और स्वामी सहजानन्द के नेतृत्व का तुलनात्मक अध्ययन

सचिन सिंह यादव
शोधअध्येता, इतिहासविभाग
गांधी फैज-ए-आम(पी.जी.) कॉलेज, शाहजहांपुर
Email-1007snyyadav@gmail.com

डॉ तनवीर हुसैन
असिस्टेंट प्रोफेसर
गांधी फैज-ए-आम(पी.जी.) कॉलेज, शाहजहांपुर

सारांश

भारतीय कृषक आंदोलन का इतिहास विविध वैचारिक प्रवृत्तियों, नेतृत्व शैलियों तथा संघर्ष-पद्धतियों से निर्मित हुआ है। इस इतिहास में महात्मा गांधी और स्वामी सहजानन्द सरस्वती दो ऐसे प्रमुख नेता हैं, जिन्होंने भिन्न वैचारिक आधारों पर कृषकों का नेतृत्व करते हुए भारतीय कृषक आंदोलन को नई दिशा प्रदान की। महात्मा गांधी ने सत्याग्रह, अहिंसा, नैतिक शक्ति तथा जनसहभागिता के माध्यम से कृषकों को भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्यधारा से जोड़ने का प्रयास किया, जबकि स्वामी सहजानन्द सरस्वती ने कृषकों को एक स्वतंत्र सामाजिक-राजनीतिक शक्ति के रूप में संगठित करते हुए भूमि संबंधों, जमींदारी उन्मूलन, आर्थिक न्याय तथा वर्गीय चेतना पर विशेष बल दिया। यद्यपि दोनों नेताओं पर पर्याप्त शोध उपलब्ध है, तथापि उनके कृषक नेतृत्व का तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन अपेक्षाकृत सीमित है।

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य गांधी और स्वामी सहजानन्द सरस्वती के कृषक नेतृत्व का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए उनके वैचारिक आधार, कृषक संबंधी दृष्टिकोण, संगठनात्मक शैली, संघर्ष की रणनीतियों, भूमि एवं जमींदारी संबंधी विचारों, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से संबंध तथा भारतीय कृषक आंदोलन पर उनके दीर्घकालिक प्रभाव का विश्लेषण करना है।

मुख्य शब्द: कृषक आंदोलन, कृषक नेतृत्व, महात्मा गाँधी, स्वामी सहजानन्द सरस्वती, किसान सभा, कृषि राजनीति।

प्रस्तावना

भारतीय समाज की आर्थिक एवं सामाजिक संरचना में कृषक वर्ग का स्थान अत्यंत केंद्रीय रहा है। यद्यपि कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार थी, तथापि औपनिवेशिक शासन के दौरान लागू की गई भूमि-राजस्व नीतियों, जमींदारी व्यवस्था, महाजनी शोषण तथा वाणिज्यिक कृषि के विस्तार ने कृषकों की पारंपरिक जीवन-व्यवस्था को गहरे संकट में डाल दिया।¹ बढ़ते लगान, ऋणग्रस्तता, बेदखली तथा प्रशासनिक दमन ने कृषक असंतोष को व्यापक सामाजिक एवं

राजनीतिक प्रतिरोध का स्वरूप प्रदान किया। परिणामस्वरूप उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर बीसवीं शताब्दी के मध्य तक भारत के विभिन्न भागों में अनेक कृषक आंदोलन विकसित हुए, जिन्होंने औपनिवेशिक शासन की आर्थिक नीतियों को चुनौती देने के साथ-साथ भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के सामाजिक आधार का भी विस्तार किया।

भारतीय कृषक आंदोलनों की इस ऐतिहासिक प्रक्रिया की व्याख्या अनेक इतिहासकारों एवं समाजशास्त्रियों ने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से की है। विपिन चन्द्र के अनुसार औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों ने भारतीय कृषि संरचना को इस प्रकार परिवर्तित किया कि किसान असंतोष राष्ट्रीय आंदोलन का एक महत्वपूर्ण आधार बन गया।¹² दूसरी ओर सुमित सरकार कृषक आंदोलनों को ग्रामीण समाज में विकसित हो रही नई सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना की अभिव्यक्ति के रूप में देखते हैं।¹³ वहीं डी.एन. धनगरे का मत है कि भारतीय कृषक आंदोलनों को केवल आर्थिक प्रतिक्रिया के रूप में नहीं, बल्कि ग्रामीण समाज में शक्ति-संबंधों, वर्गीय चेतना और राजनीतिक संगठन के विकास की प्रक्रिया के रूप में समझा जाना चाहिए।¹⁴ इन अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि भारतीय कृषक आंदोलन केवल आर्थिक संघर्ष नहीं था, बल्कि सामाजिक परिवर्तन और राजनीतिक पुनर्संरचना की एक व्यापक ऐतिहासिक प्रक्रिया भी था।

इसी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में महात्मा गांधी और स्वामी सहजानन्द दो ऐसे प्रमुख नेता के रूप में उभरते हैं जिन्होंने भारतीय कृषक आंदोलन को अलग-अलग वैचारिक आधारों पर दिशा प्रदान की। महात्मा गांधी ने कृषकों को भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्यधारा से जोड़ते हुए सत्याग्रह, अहिंसा, नैतिक प्रतिरोध तथा जनसहभागिता को संघर्ष का आधार बनाया। उनके लिए किसान केवल आर्थिक रूप से शोषित वर्ग नहीं थे, बल्कि स्वराज की स्थापना के प्रमुख सहभागी भी थे। ज्यूडिथ ब्राउन ने गांधी के नेतृत्व को नैतिक वैधता और जनविश्वास पर आधारित नेतृत्व बताया है,¹⁵ जबकि बिपिन चन्द्र के अनुसार गांधी ने किसान आंदोलनों को राष्ट्रीय राजनीति से जोड़कर उन्हें व्यापक राजनीतिक आधार प्रदान किया।

इसके विपरीत, स्वामी सहजानन्द सरस्वती ने कृषक प्रश्न को भूमि संबंधों, जमींदारी शोषण, वर्गीय असमानता तथा कृषकों के आर्थिक अधिकारों के संदर्भ में देखा। उन्होंने कृषकों को एक स्वतंत्र सामाजिक एवं राजनीतिक शक्ति के रूप में संगठित करने का प्रयास किया तथा किसान सभाओं के माध्यम से उनके अधिकारों के लिए व्यापक संघर्ष का नेतृत्व किया। वाल्टर हाउसर ने स्वामी सहजानन्द को आधुनिक भारत के सर्वाधिक प्रभावशाली कृषक नेताओं में स्थान दिया है और यह प्रतिपादित किया है कि उन्होंने किसान सभा आंदोलन को वैचारिक तथा संगठनात्मक आधार प्रदान किया।¹⁶ डी. एन. धनगरे भी उन्हें भारतीय किसान राजनीति के विकास में एक निर्णायक व्यक्तित्व मानते हैं। इस प्रकार जहाँ गांधी का कृषक नेतृत्व नैतिक-राष्ट्रवादी राजनीति से अनुप्राणित था, वहीं स्वामी सहजानन्द का नेतृत्व कृषकों के सामाजिक-आर्थिक अधिकारों, संगठनात्मक शक्ति और संरचनात्मक परिवर्तन पर अधिक बल देता था।

भारतीय इतिहासलेखन का अवलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि गांधी तथा स्वामी सहजानन्द सरस्वती दोनों पर पर्याप्त शोध उपलब्ध है। गांधी के संदर्भ में सत्याग्रह, राष्ट्रीय आंदोलन, ग्राम स्वराज तथा किसान आंदोलनों में उनकी भूमिका पर व्यापक अध्ययन हुए हैं, जबकि स्वामी सहजानन्द के संदर्भ में किसान सभा आंदोलन, जमींदारी-विरोध, वर्गीय राजनीति तथा कृषक संगठनों के विकास पर अनेक महत्वपूर्ण कृतियाँ उपलब्ध हैं। तथापि उपलब्ध साहित्य का अधिकांश भाग दोनों नेताओं के विचारों एवं कार्यों का पृथक-पृथक अध्ययन प्रस्तुत करता है। भारतीय कृषक आंदोलन के संदर्भ में उनके कृषक नेतृत्व का समान विश्लेषणात्मक मानदंडों के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन अपेक्षाकृत सीमित दिखाई देता है। विशेष रूप से यह प्रश्न कि दोनों नेताओं ने कृषक की अवधारणा, नेतृत्व की प्रकृति, संगठनात्मक रणनीति, संघर्ष-पद्धति, भूमि प्रश्न तथा सामाजिक परिवर्तन की दिशा को किस प्रकार परिभाषित किया, अभी और गंभीर अध्ययन की अपेक्षा रखता है। प्रस्तुत शोध-पत्र इसी इतिहासलेखन रिक्ति (Historiographical Gap) को भरने का प्रयास करता है।

समकालीन भारत में कृषि संकट, भूमि संबंधी प्रश्न, किसानों की आय, कृषि नीतियों तथा किसान आंदोलनों को लेकर चल रही बहसों के संदर्भ में गांधी और स्वामी सहजानन्द सरस्वती के कृषक नेतृत्व का पुनर्मूल्यांकन अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। आज जब किसान नेतृत्व की प्रकृति, लोकतांत्रिक जनसंगठनों की भूमिका तथा ग्रामीण समाज में सामाजिक-आर्थिक न्याय के प्रश्न पुनः चर्चा के केंद्र में हैं, तब इन दोनों नेताओं के नेतृत्व प्रतिमानों का तुलनात्मक अध्ययन न केवल भारतीय कृषक आंदोलन के इतिहास को नई दृष्टि से समझने में सहायक सिद्ध होगा, बल्कि समकालीन किसान राजनीति और ग्रामीण परिवर्तन के विमर्श को भी एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक आधार प्रदान करेगा। इसी दृष्टि से प्रस्तुत शोध-पत्र भारतीय कृषक आंदोलन में गांधी और स्वामी सहजानन्द सरस्वती के कृषक नेतृत्व का तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है।

सहजानंद और गाँधी में भिन्नता

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महात्मा गाँधी और स्वामी सहजानंद सरस्वती दोनों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही, किन्तु उनकी विचारधाराओं में गहरे अंतरमौजूद थे। गाँधी का दृष्टिकोण अहिंसा, नैतिकता और आत्मनिर्भरता पर आधारित था, जबकि सहजानंद किसानों के संघर्ष को वर्गीय परिप्रेक्ष्य में देखते थे और आवश्यक होने पर क्रांतिकारी प्रतिरोध की आवश्यकता मानते थे। इसको निम्न बिन्दुओं से समझा जा सकता है—

महात्मा गांधी

आधुनिक भारत के राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम में सबसे केंद्रीय नाम महात्मा गांधी जी का रहा है। 1920 से आजादी प्राप्त होने तक के कालखंड को ही गांधीवादी युग की संज्ञा दी गई। किसी एक व्यक्ति को इतना अधिक महत्व दिए जाने के पीछे ठोस कारण भी मौजूद होते हैं। वैसे तो अंग्रेजों के खिलाफ राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष 1857 की क्रांति से ही प्रारंभ हो जाता है और इसकी संरचित तौर पर शुरुआत 1885 में कांग्रेस की स्थापना के साथ जोड़ी जाती है। 1920 तक कांग्रेस में संघर्ष के उदारवादी व उग्रवादी राजनीति एवं तरीकों को देखा गया। इस कालखंड में कांग्रेस कुछ संवैधानिक अधिकार प्राप्त करने में सफल रही एवं बंगाल विभाजन के विरोध में स्वदेशी आंदोलन का नेतृत्व किया। परंतु कांग्रेस इस समय तक एक शिक्षित मध्यवर्गीय संस्था बनी रही जिसका वर्ष भर में तीन दिन सम्मेलन होता था।

1920 में राष्ट्रीय राजनीति में क्रांतिकारी घटना के तौर पर गांधीजी के प्रभाव में कांग्रेस का पूरा चरित्र ही बदल गया इसी परिवर्तन के बिंदु से राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम का वह काल प्रारंभ होता है जिसे गांधीवादी युग के नाम से जानते हैं। कांग्रेस वर्ष भर सक्रिय रहने वाला राजनीतिक दल बना जो सिर्फ मध्यम वर्ग का संगठन नहीं बल्कि 'जनता का दल' बन गया। इसमें किसान, मजदूर, शिक्षित वर्ग, महिला, जनजातियां सभी वर्ग जुड़े साथ ही उनकी समस्याएं भी राष्ट्रीय आंदोलन का अंग बन गईं।

1920 के दशक में भारतीय किसान भीषण आर्थिक संकट से जूझ रहे थे। वे जमींदार, महाजन व ब्रिटिश सरकार के तिहरे शोषण के मध्य पिसने वाला सबसे बड़ा शोषित वर्ग थे। अन्य वर्गों की भांति किसानों को गांधी जी की संगठनात्मक एवं नेतृत्व शैली ने आकर्षित किया। वे करोड़ों भारतीयों में से उभरे हुए नेता थे न कि ऊपर से थोपे हुए। सुभाष चंद्र बोस के अनुसार, उनमें कुछ ऐसी विशेषता थी जो भारतीय जनता को उनकी ओर आकर्षित करती थी। वे जहाँ भी जाते, छोटा-से-छोटा भारतीय यह अनुभव करता कि वे उसी के 'हाड़-मांस' का भाग हैं। वे हरबर्ट स्पेंसर या एडमंड बर्क की जटिल भाषा के बजाय भगवद्गीता और रामायण की भाषा में बात करते थे। जब वे 'राम-राज्य' की महत्ता बताते थे, तो साधारण

किसान उसे सहजता से समझ लेता था। उनकी वेशभूषा, रहन-सहन और कार्यशैली संतों जैसी थी, जिसमें आम भारतीय अपनी छवि देखता था।

गांधीजी द्वारा भारतीय राजनीति में अपना कदम कृषक आंदोलन के नेतृत्व से रखा। उनके नेतृत्व एवं मार्गदर्शन में किये कृषक आंदोलन निम्न है-

चम्पारण सत्याग्रह (1917)—यह भारत में गांधीजी का पहला बड़ा कृषक आंदोलन था जिसका कारण बिहार के चम्पारण जिले में किसान 'तिनकठिया प्रणाली' के तहत नील की खेती करने और ब्रिटिश नीलहों द्वारा थोपे गए अत्यधिक करों से त्रस्त थे। राजकुमार शुक्ल के निमंत्रण पर गांधीजी वहाँ पहुँचे⁷ और किसानों की शिकायतों की जाँच की। उन्होंने सविनय अवज्ञा का प्रयोग करते हुए सरकार को जाँच समिति बनाने पर मजबूर किया। परिणामस्वरूप इस आंदोलन के सफल होने पर चम्पारण कृषि अधिनियम (1918) पारित हुआ⁸, जिससे नील की अनिवार्य खेती समाप्त हुई और अवैध रूप से वसूले गए धन का एक हिस्सा वापस किया गया।

खेड़ा सत्याग्रह (1918)—गुजरात के खेड़ा जिले में फसल खराब होने और अकाल के बावजूद ब्रिटिश सरकार भू-राजस्व (लगान) की वसूली सख्ती से कर रही थी। गांधीजी ने किसानों को सलाह दी कि वे लगान न दें और अहिंसक बने रहें। उन्होंने किसानों से प्रतिज्ञा करवाई कि वे अपनी जमीन की कुर्की सहेंगे लेकिन खुद से लगान जमा नहीं करेंगे। अंततः सरकार ने एक गुप्त समझौता किया कि केवल सक्षम किसानों से ही लगान वसूला जाए और गरीबों का लगान माफ कर दिया जाए

बारडोली सत्याग्रह (1928)—यद्यपि इसका प्रत्यक्ष नेतृत्व सरदार वल्लभभाई पटेल ने किया था, लेकिन यह गांधीजी के सिद्धांतों और उनकी देखरेख में संचालित था। इसका कारण सरकार ने भू-राजस्व की दरों में अचानक 22 प्रतिशत की वृद्धि कर दी थी। गांधीजी के आह्वान पर किसानों ने संगठित प्रतिरोध किया और लगान देने से मना कर दिया। यह आंदोलन सफल रहा और सरकार ने कर वृद्धि 22% के स्थान पर सिर्फ 6% करने हेतु बाध्य होना पड़ा।⁹

महात्मा गांधी के नेतृत्व में संचालित चंपारण और खेड़ा सत्याग्रह भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में मील का पत्थर साबित हुए। इन आंदोलनों में किसानों की सक्रियता ही कांग्रेस के नेतृत्व को शहर से गांव की ओर आने पर बाध्य किया। इनसे पहली बार किसानों की समस्या को राष्ट्रीय राजनीति की मुख्य धारा से जोड़ा गया। इन आंदोलनों ने भारतीय कृषक समाज को आत्मसम्मान और सामूहिक शक्ति का बोध कराया। किसानों ने यह समझा कि वे बिना किसी हिंसा के भी संगठित होकर दमनकारी औपनिवेशिक सत्ता को चुनौती दे सकते हैं।

गांधी की विचारधारा

गांधी जी का किसानों, किसान आन्दोलनों के प्रति दृष्टिकोण उनके कुछ सिद्धांतों एवं विचारों के इर्द-गिर्द घूमता था। यहाँ उनके इन्हीं विचारों एवं सिद्धांतों का उल्लेख किया गया है—

अहिंसात्मक दृष्टिकोण

महात्मा गाँधी का पूरा राजनीतिक दर्शन अहिंसा और सत्याग्रह पर आधारित था। उनका मानना था कि किसी भी अन्यायी शासन या व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष हिंसा से नहीं, बल्कि अहिंसात्मक प्रतिरोध और नैतिक बल से किया जाना चाहिए। गाँधी के लिए किसान आन्दोलन भी इसी दर्शन का अंग था। 1917 का चम्पारण सत्याग्रह इसका उदाहरण है,

जहाँ उन्होंने नील की खेती करने वाले किसानों को संगठित किया और बिना हिंसा के उनकी समस्याओं को सामने रखा। गाँधी का विश्वास था कि यदि किसान सत्य और अहिंसा के आधार पर संघर्ष करेंगे तो अंग्रेज सरकार पर नैतिक दबाव बनेगा और वे झुकने को विवश होंगे। वे यह भी मानते थे कि हिंसा किसानों की समस्याओं को और बढ़ा सकती है, क्योंकि अंग्रेज दमन का सहारा लेकर आन्दोलन को कुचल देंगे। गाँधी की अहिंसा के प्रति प्रतिबद्धता इस बात से भी सिद्ध होती है कि उन्होंने असहयोग जैसे राष्ट्रीय स्तर पर संचालित आन्दोलन को चोरी चोरा जैसी हिंसात्मक घटना हो जाने पर वापिस ले लिया।

नैतिक दृष्टिकोण

गाँधी किसानों की समस्याओं को नैतिकता और मानवीय दृष्टि से देखते थे। उनका मानना था कि जमींदार और अंग्रेज दोनों ही नैतिक दबाव के तहत सुधार के लिए बाध्य हो सकते हैं। उन्होंने किसान-जमींदार सम्बन्ध को पूरी तरह टकरावपूर्ण नहीं माना, बल्कि उसमें सुधार और संवाद की गुंजाइश देखी। गाँधी का लक्ष्य था कि भारतीय समाज में वर्ग संघर्ष न हो, बल्कि वर्गों के बीच सहयोग और सद्भाव बना रहे। उनके अनुसार, किसान संघर्ष की बुनियाद नैतिक अपील होनी चाहिए, ताकि व्यापक राष्ट्रीय एकता को कोई खतरा न हो। कांग्रेस भी जमींदारों और किसानों के बीच सामंजस्य चाहती थी ताकि राष्ट्रीय एकता बनी रहे।

गांधी जी का अहिंसावादी एवं नैतिक दृष्टिकोण भी किसानों की समस्या को कभी-कभी बढ़ा देता था। एक तरफ ब्रिटिश सरकार व जमींदार विरोध को दबाने हेतु हर दमनात्मक कार्यवाही करते दूसरी ओर कमजोर किसानों के हाथ गांधी जी के नैतिकता और अहिंसा के सिद्धांत की बेड़ियों में बंधे हुए थे। इसके कई बार किसानों एवं राष्ट्रीय आन्दोलन को नकारात्मक परिणाम झेलने पड़े जैसे जनपद रायबरेली उत्तर प्रदेश में मुंशीगंज हत्याकांड जिसमें सैकड़ों किसानों की जान गई।¹⁰ इसी तरह चोरी-चोरा घटना के चलते असहयोग आन्दोलन को वापस लेना राष्ट्रीय स्तर पर कई तरह के प्रश्न उठाता है।

गांधीजी का सत्याग्रह

गांधीजी के अनुसार सत्याग्रह का अर्थ 'सत्य के प्रति आग्रह' या 'सत्य की शक्ति' है, जो निष्क्रिय प्रतिरोध से भिन्न एक सक्रिय और नैतिक बल है। इसकी आधारशिला सत्य और अहिंसा है, जिन्हें गांधीजी एक ही सिक्के के दो पहलू और अटूट नैतिक नियम मानते थे। गांधीजी के लिए किसानों के संदर्भ में सत्याग्रह एक नैतिक और अहिंसक शस्त्र था, जिसका मुख्य उद्देश्य किसानों को जागरूक और स्वावलंबी बनाकर 'ग्राम स्वराज' की नींव रखना था। उन्होंने चंपारण और खेड़ा जैसे आंदोलनों में सत्याग्रह के जरिए किसानों को अन्याय के विरुद्ध निर्भयता और आत्म-शुद्धि का पाठ पढ़ाया और उन्हें पहली बार राष्ट्रीय राजनीति की मुख्यधारा से जोड़ा। उन्होंने सत्याग्रह को विशिष्ट स्थानीय आर्थिक मुद्दों तक सीमित रखा ताकि जमींदारों और किसानों के बीच संतुलन बना रहे और राष्ट्रीय एकता खंडित न हो। इस प्रकार, किसानों के लिए सत्याग्रह केवल लगान या कर में राहत की लड़ाई नहीं, बल्कि एक नैतिक क्रांति थी जिसने उन्हें आत्म-सम्मान के साथ खड़े होना सिखाया।

गांधी जी ने अहिंसा और सत्याग्रह को ऐसे नैतिक हथियार के रूप में विकसित किया जो किसानों को संगठित तो करता लेकिन उन्हें एक सीमा से आगे बढ़ने से रोकना था स्वामी सहजानंद का मानना था कि गांधी जी की अहिंसा नीति वास्तव में शोषक वर्गों की संपत्ति की सुरक्षा सुनिश्चित करने का तरीका है।

जमींदारी पर विचार

गांधी ने कभी भी जमींदारी प्रथा को प्रत्यक्ष रूप से चुनौती नहीं दी। उनका दृष्टिकोण था कि जमींदार और किसान परस्पर सहयोग से काम करें। यह नीति उन किसानों के लिए अपर्याप्त थी, जिनकी समस्याओं की जड़ ही जमींदारी ढाँचा था। उन्होंने जमींदारों द्वारा किसानों के शोषण की आलोचना की, परंतु जमींदारी व्यवस्था के उन्मूलन के बजाय नैतिक परिवर्तन और 'ट्रस्टीशिप' के सिद्धांत का समर्थन किया। जमींदारों के संबंध में वे कहते थे – जमींदार एक प्रणाली का अंग मात्र है, उसके विरुद्ध आंदोलन छेड़ना जरूरी नहीं है। जब तक जमींदार किसानों के साथ अच्छा बर्ताव करते हैं, तब तक उनसे हमारा कोई झगड़ा नहीं है।¹¹

वे अहिंसा एवं सत्याग्रह से जमींदारों के हृदय परिवर्तन के हिमायती थे। गांधीजी वर्ग संघर्ष की बजाए वर्ग सामंजस्य चाहते थे। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि जमींदारों के साथ यह व्यवहार एक सोची समझी रणनीति का हिस्सा हो सकता है क्योंकि कांग्रेस के सदस्यों में बड़े पैमाने पर जमींदार वर्ग शामिल था एवं वह इसकी नीतियों को प्रभावित कर रहा था। गांधी जी पता नहीं जमींदारों के अत्याचारों से अनभिज्ञ थे या शायद अनभिज्ञ बने रहना चाहते थे। इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण 1934 की घटना से मिलता है जब स्वामी सहजानंद बिहार में आए भूकंप से किसानों की समस्याओं के बारे में महात्मा गांधी को अवगत कराया तो उन्होंने कहा कि दरभंगा महाराज (जमींदार) से ये बातें कह दीजिए उनके मैनेजर कांग्रेसी है वे किसानों की समस्याएं अवश्य दूर करेंगे। स्वामी जी को यहां धक्का सा लगा क्योंकि सारी समस्याओं की जड़ स्वयं दरभंगा महाराज ही थे, उसी दिन से सहजानंद का गांधी जी से मोहभंग हो गया।¹²

ट्रस्टीशिप (न्यासधारिता) की अवधारणा

किसानों के संदर्भ में एक ऐसा सामाजिक-आर्थिक सिद्धांत था, जहाँ जमींदारों को अपनी संपत्ति का मालिक नहीं बल्कि उसे समाज की धरोहर मानकर किसानों के हित में उसका 'ट्रस्टी' बनना था। उनका मानना था कि वर्ग-संघर्ष के बजाय शोषकों के 'हृदय परिवर्तन' के जरिए ज़मीन का उपयोग सामूहिक कल्याण और किसानों की खुशहाली के लिए किया जाना चाहिए। यह अवधारणा ज़मींदारी उन्मूलन के बजाय वर्ग-समन्वय पर आधारित थी, ताकि अहिंसक तरीके से आर्थिक समानता और 'ग्राम स्वराज' की स्थापना हो सके। गांधीजी के अनुसार, यदि कोई ट्रस्टी (जमींदार) किसानों के हितों की रक्षा करने में विफल रहता, तो किसानों को सत्याग्रह के माध्यम से अपने अधिकार मांगने का पूरा नैतिक हक था।

गांधीजी की ट्रस्टीशिप (न्यायिता) की अवधारणा की आलोचना मुख्य रूप से इस आधार पर की जाती है कि यह जमींदारी और पूँजीवाद को समाप्त करने के बजाय उन्हें नैतिक संरक्षण प्रदान करती है, जिससे शोषक वर्गों की मनमर्जी बनी रहती है। स्वामी सहजानंद सरस्वती और वामपंथी विचारकों ने इसे 'सुधारवादी' और 'स्वप्नलोकीय' माना, क्योंकि यह वास्तविक शोषण को रोकने के लिए केवल शोषकों के 'हृदय परिवर्तन' पर निर्भर था। आलोचकों का तर्क था कि यह सिद्धांत किसानों के भूमि अधिकारों की अनदेखी करता है और उनकी वर्ग-चेतना को दबाकर क्रांतिकारी भूमि सुधारों के मार्ग में बाधा डालता है।

ग्राम स्वराज व रामराज्य

गांधी किसानों को भारतीय समाज का नैतिक स्तम्भ मानते थे और उनका प्रसिद्ध वक्तव्य है जिसमें वे विश्वास भी करते थे “भारत की आत्मा गांवों में बसती है और जब तक किसानों को न्याय और स्वतंत्रता नहीं मिलेगी तब तक राष्ट्र की स्वतंत्रता अधूरी रहेगी”।¹³ गांधी जी का आर्थिक एवं राजनीतिक मॉडल ग्राम स्वराज की अवधारणा पर केंद्रित था जिसका केन्द्र आत्मनिर्भर गांव, अहिंसक जीवनशैली और सामूहिक श्रम की भावना थी। वे सादा जीवन और शारीरिक श्रम को ही किसान का सच्चा जीवन मानते थे।

गांधी का जोर ग्राम स्वराज, चरखा और आत्मनिर्भरता पर था। यह किसानों की सामाजिक चेतना को बढ़ाने में तो उपयोगी था, लेकिन आर्थिक सुधार की दिशा में यह ठोस उपाय नहीं था। किसानों को तत्काल राहत की आवश्यकता थी जैसे लगान कटौती, कर्जमाफी और भूमिहीनों को भूमि का अधिकार जो गांधीवादी आन्दोलन में सीमित रूप से ही उठाये गये।

किसान आन्दोलन एवं सहभागिता पर दृष्टिकोण

गांधीवादी आन्दोलन में किसानों की भागीदारी तो रही, लेकिन उन्हें अक्सर केवल राष्ट्रीय आन्दोलन की सहायक शक्ति के रूप में देखा गया। किसान प्रश्न को कभी भी कांग्रेस या गांधी की प्राथमिकता नहीं मिली। गांधीवादी नेतृत्व में किसान आंदोलन को कांग्रेस के राष्ट्रीय आन्दोलन कार्यक्रम के एक विस्तार के रूप में देखा ना कि एक स्वतंत्र एवं स्वायत्त राजनीतिक शक्ति के रूप में। जब भी किसानों का संघर्ष उग्र होकर स्थानीय जमींदारों के हितों को चुनौती देने लगता तो गांधी जी आंदोलन को वापस ले लेते या स्थगित कर देते।

स्वामी सहजानन्द और कृषक नेतृत्व

स्वामी सहजानन्द सरस्वती आधुनिक भारतीय इतिहास के एक अद्वितीय क्रांतिकारी संन्यासी, प्रखर राष्ट्रवादी और संगठित किसान आंदोलन के जनक थे। उनका व्यक्तित्व शास्त्रों के पांडित्य और ज़मीनी संघर्ष के अद्भुत समन्वय का प्रतीक था। सहजानंद बचपन में एक प्रखर एवं उत्कृष्ट छात्र थे जो फिर एक दंडी संन्यासी बने उस समय सांसारिक एवं सामाजिक कार्यों से पूर्णतः विरक्त हो गए थे, यह काल 1907 से 1914 के बीच का रहा। परंतु जीवन के अगले पड़ाव में पहले सामाजिक कार्य (भूमिहारण ब्राह्मण सभा) फिर गांधी जी के प्रभाव में राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष से ऐसा जुड़े की संपूर्ण जीवन उसी को समर्पित कर दिया।¹⁴ हालांकि राजनीति में गांधी जी से प्रभावित होकर आए थे परंतु आगे कुछ घटनाओं से गांधीवाद से मोह भंग हो गया। स्वामी जी ने स्वयं को सबसे दमित और पीड़ित किसान एवं मजदूरों की सेवा में पूरी तरह समर्पित कर दिया। भारत में जैसे स्वामी विवेकानंद ने दरिद्र नारायण की सेवा को ईश्वर की सेवा बताया वैसे ही स्वामी सहजानंद ने स्पष्ट रूप से कहा किसान ही मेरे भगवान हैं और मैं उनकी पूजा किया करता हूं और या तो मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता कि कोई मेरे भगवान का अपमान करे।¹⁵

यद्यपि किसानों की समस्याओं को राष्ट्रीय स्तर पर पहचान महात्मा गांधी द्वारा चंपारण खेड़ा सत्याग्रह के जरिए दिला दी गई। किसानों द्वारा राष्ट्रीय संघर्ष में भाग लेने से उनमें राजनीतिक चेतना का भी प्रसार हुआ। परंतु किसानों की मूलभूत समस्याओं एवं शोषण का कोई विशेष हल ना हुआ। स्वामी सहजानंद इन समस्याओं को समझ पाए, वह स्वयं एक निम्न मध्यम वर्गी किसान परिवार से जुड़े हुए थे। उन्होंने बचपन से ही किसानों के कड़े संघर्ष एवं दयनीय स्थिति को देखा था।

संगठनात्मक योगदान

स्वामी सहजानंद अपने संन्यास के दिनों में गांवों में घूमे थे अतः उन्हें जमीनी स्तर पर किसानों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थितियों का ज्ञान था। वह अपनी आत्मकथा में तीन ऐसी ही घटनाओं का वर्णन भी करते हैं जिन्होंने उनके हृदय पर अमिट छाप छोड़ी एवं जीवन को पलट कर उग्रपंथी बनाने में भूमिका निभाई।¹⁶ राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने एवं उसे करीब से समझने पर उन्हें यह एहसास हो गया की किसानों के शोषणकर्ता अत्यधिक ताकतवर है अतः किसानों को संगठित व एकजुट करके ही उनकी समस्याओं को हल किया जा सकता है।

प्रारंभ में किसानों की समस्याओं का समाधान एवं वर्ग सामंजस्य स्थापित करने के उद्देश्य से 4 मार्च 1928 को पटना जिले के बिहटा में 'पश्चिमी पटना किसान सभा' की विधिवत स्थापना की गई।¹⁷ इसके जरिए किसान सभाओं का आयोजन किया गया एवं किसानों को एकजुट किया गया। इस स्थानीय सफलता के बाद स्वामी जी ने इसका प्रांतीय स्तर तक विस्तार करते हुए 17 नवंबर 1929 को सोनपुर में मेले के अवसर पर 'बिहार प्रांत किसान सभा' का गठन किया।¹⁸

इस संगठन की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि सरकार को इसके दबाव में 'काश्तकारी बिल' को वापस लेना पड़ा। इससे किसानों को सामूहिक शक्ति के महत्व का पता चला। जिस प्रकार गांधीजी ने देश में राजनीतिक चेतना व सामाजिक सुधारों को प्रेरित करने हेतु यात्राएं की वैसे ही सहजानंद ने जगह-जगह पर किसान सभा कर किसानों में राजनीतिक चेतना का संचार व स्वयं के अधिकारों हेतु लड़ने के लिए तैयार किया। अप्रैल 1933 से नवंबर 1935 के मध्य (लगभग ढाई वर्षों की अवधि में) बिहार के 10 जिलों में सैकड़ों किसान सभाओं, सम्मेलनों का आयोजन किया गया।¹⁹ इससे स्वामी सहजानंद के द्वारा किए गए किसान संघर्ष की गहनता का अंदाजा लगाया जा सकता है।

सहजानंद के नेतृत्व में बिहार क्रांति किसान सभा ने 'बकाश्त भूमि आंदोलन' व 'डालमिया चीनी मिल संघर्ष', बिहटा जैसे सफलतापूर्वक किए गए कृषक आंदोलन चलाए।²⁰

इन संघर्षों की सफलता व देश में बढ़ते समाजवादी एवं साम्यवादी विचारधारा के प्रभाव से एवं किसानों के अखिल भारतीय संगठन की आवश्यकता को महसूस करते हुए 1936 के लखनऊ अधिवेशन में 'अखिल भारतीय किसान सभा' का गठन किया गया। जिसका प्रथम अध्यक्ष किसानों के नेता स्वामी सहजानंद सरस्वती एवं एन जी रंगा को महासचिव बनाया गया। AIKS का घोषणा पत्र क्रांतिकारी था जिसमें जमींदारी उन्मूलन, लगान में कमी और "जो जोते वह खाए" जैसे प्रमुख मुद्दे शामिल थे।²¹

सहजानंद की विचारधारा

स्वामी सहजानंद की विचारधारा क्रमिक विकास की प्रक्रिया थी। अपनी आत्मकथा में वे स्वयं कहते हैं कि उनका जीवन किसी किताब या व्यक्तित्व से प्रभावित न होकर निरंतर अनुभवों के द्वारा निर्मित हुआ है। इसी संदर्भ में उनके जमींदारी व्यवस्था, वर्गीय दृष्टिकोण, समाजवाद मार्क्सवाद, धर्म संबंधी विचारों ने समय के साथ आकर लिया।

स्वामी जी अपने राजनीतिक जीवन के शुरूआती डेढ़ दशक 1920 से 1934 तक कट्टर गांधीवादी और कांग्रेस के निष्ठावान सिपाही रहे। उनके वामपंथ की ओर बढ़ने का निर्णायक मोड़ 1934 का बिहार का भूकंप बना जिसमें गांधी जी ने दरभंगा महाराज का पक्ष लिया। यहीं से 14 वर्ष की गांधीवादी भक्ति टूट गई और सहजानंद ने गांधीवाद को 'अंतिम सलाम' कह

दिया। इसके बाद सहजानंद का वामपंथ की ओर झुकाव बढ़ा एवं स्वामी जी ने वर्ग सामंजस्य की जगह वर्ग संघर्ष की राह चुनी।²²

जमींदारी व्यवस्था व वर्गीय दृष्टिकोण

स्वामी सहजानंद का दृष्टिकोण मूलतः वर्गीय था। उन्होंने किसानों की दुर्दशा को वर्गीय शोषण का परिणाम माना। उनके लिए किसान और जमींदार के बीच सम्बन्ध परस्पर विरोधी थे। जमींदार वर्ग का अस्तित्व ही किसानों के शोषण पर टिका था। सहजानंद ने कहा कि जब तक जमींदारी व्यवस्था समाप्त नहीं होगी, तब तक किसानों की वास्तविक मुक्ति संभव नहीं है। उनका मानना था कि नैतिक अपील पर्याप्त नहीं है; किसानों को अपने वर्गीय हितों की रक्षा के लिए संघर्ष और संगठन का रास्ता अपनाना होगा।²³

स्वामी सहजानन्द सरस्वती का जमींदारी व्यवस्था के प्रति दृष्टिकोण अत्यंत क्रांतिकारी और समझौताहीन था। उन्होंने इस व्यवस्था को भारतीय कृषि के पिछड़ेपन और किसानों के शोषण की मुख्य जड़ माना। उनका मानना था कि जमींदार किसानों के लिए एक 'खतरनाक जोंक' की तरह हैं, जो किसानों के खून-पसीने की कमाई को बिना किसी श्रम के हड़प लेते हैं। सहजानन्द का सबसे प्रसिद्ध और क्रांतिकारी नारा था— "जो जोते वो खाए"।²⁴ उन्होंने जमींदारों को 'मुफ्तखोर लगानचट्ट' की संज्ञा दी और कहा कि जमींदारों का अस्तित्व किसानों के शोषण पर ही टिका है। स्वामी सहजानन्द ने अपनी कृति 'जमींदारी प्रथा' (1949) में स्पष्ट किया कि जमींदारी केवल एक आर्थिक शोषण की पद्धति नहीं है, बल्कि यह 'सामाजिक वर्चस्व' की एक दमनकारी संरचना भी है।

सहजानन्द बिना किसी मुआवजे के जमींदारी प्रथा को तत्काल समाप्त करने के पक्षधर थे। बिहार प्रांतीय किसान सभा के 1935 के हाजीपुर सम्मेलन में पहली बार जमींदारी हटाने का प्रस्ताव स्वीकृत कराया, आगे अखिल भारतीय किसान सभा के मुख्य लक्ष्यों में जमींदारी उन्मूलन रखा।

जमींदारी के प्रश्न पर ही स्वामीजी का गांधीजी से मोहभंग हुआ, 1934 में बिहार भूकंप के बाद जब गांधीजी ने दरभंगा महाराज के अत्याचारों के विरुद्ध कार्रवाई करने के बजाय उन पर भरोसा करने की बात कही, तो स्वामीजी ने गांधीजी को 'आखिरी सलाम' कह दिया और कांग्रेस की समझौतावादी नीति से अलग हो गए।

सहजानन्द ने विश्लेषण किया कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद और भारतीय सामंतवाद (जमींदारी) एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। वे जमींदारों को ब्रिटिश शासन का 'पोषक' और 'मुख्य सामाजिक आधार' मानते थे। उनका मानना था कि जब तक भारत में ब्रिटिश शासन रहेगा, तब तक जमींदारी व्यवस्था को जड़ से उखाड़ना असंभव है, क्योंकि ब्रिटिश सत्ता ही इन बिचौलियों की रक्षा करती।

मार्क्सवाद संबंधी दृष्टिकोण

स्वामी जी मार्क्सवाद व समाजवाद के समर्थक तो थे परंतु उन्होंने इसके पश्चिम संस्करण का अंधानुकरण नहीं किया बल्कि भारतीय ग्रामीण परिस्थितियों, सांस्कृतिक मूल्यों और धार्मिक चेतना के साथ इसका अनूठा समन्वय प्रस्तुत किया। उन्होंने मजदूरों के विपरीत भारतीय किसानों एवं कृषि मजदूरों को क्रांति का प्राण एवं मुख्य चालक माना। भौतिकवादी दर्शन धर्म विरोधी होते हैं लेकिन स्वामी जी ने वेदांत व गीता को मार्क्सवाद के साथ जोड़ा, जिसका उल्लेख उन्होंने अपनी पुस्तक 'गीता हृदय' में किया है।²⁵ वे महात्मा गांधी के धर्म में राजनीति के समावेशन के प्रखर विरोधी थे। इसकी वजह

वह धर्म को व्यक्तिगत आस्था का विषय मानते थे। 1935 में बिहार क्रांति किसान सभा के सम्मेलन में समाजवाद को धर्म से अलग रखने की अपील की।

सामाजिक दृष्टि

स्वामी जी सिर्फ किसानों के राजनीतिक एवं सामाजिक मुद्दों तक ही सीमित नहीं थे। बल्कि ग्रामीण समाज में भारतीय समाज के लोह ढांचा जाति व्यवस्था के उन्मूलन की भी बात कही। जबकि गांधी जी जाति व्यवस्था के उन्मूलन की बजाए उसमें सुधार के समर्थक थे। स्वामी सहजानन्द इसे भारतीय समाज की सबसे अन्यायपूर्ण और विभाजनकारी संरचना मानते थे। उनका स्पष्ट मानना था कि जब तक जाति रहेगी तब तक स्वराज नहीं आ सकता। यानी यह स्वामी जी का अत्यंत क्रांतिकारी एवं दूरदर्शी दृष्टिकोण था जो उस समय के शोषण को समाप्त करने के साथ-साथ भारतीय समाज में व्याप्त हजारों वर्षों की शोषणकारी व्यवस्था का उन्मूलन करना चाहते थे।

राजनीतिक शासन व्यवस्था

सहजानंद राजनीति में किसान-मजदूर राज्य के समर्थक थे यह सिर्फ एक राजनीतिक नारा नहीं था बल्कि शोषित वर्गों की पूर्ण आर्थिक और सामाजिक मुक्ति का व्यापक खाका था। किसान राज्य का मूल मंत्र था जो अन्न उपजायेगा, अब वही कानून बनायेगा, भारत पर उसी का हक है अब शासन वही चलाएगा। उनकी कल्पना का यह राज्य एक पंचायती राज्य था जिसका निर्माण जनता द्वारा सार्वजनिक वयस्क मताधिकार के आधार पर होगा। यह पश्चिमी संसदीय लोकतंत्र से भिन्न ऐसा जनवादी राज्य होगा जहां सत्ता 'ऊपर से नीचे' नहीं बल्कि 'नीचे से ऊपर' की ओर प्रवाहित होगी। स्वामी जी के इस राज्य में निजी संपत्ति का अभाव होगा संसाधनों पर सामूहिक नियंत्रण स्थापित होगा जिससे एक समता मूलक समाज की स्थापना होगी।²⁶

वहीं गांधीजी का ग्राम स्वराज का मॉडल जिसमें गांव को आत्मनिर्भर स्वायत्त इकाइयों के रूप में स्थापना शामिल थी तथा रामराज्य की ऐसी आदर्शवादी व्यवस्था जहां राजकुमार और रंग (राजा और गरीब) दोनों के अधिकार समान रूप से सुरक्षित हों। उनके लिए यह वर्गविहीन समाज नहीं बल्कि वर्ग सामंजस्य पर आधारित समाज था।

अहिंसा पर विचार

जहां गांधी जी अहिंसा को एक परम सिद्धांत के रूप में मानते थे जिसका किसी भी स्थिति में उल्लंघन स्वीकार्य नहीं था वहीं स्वामी जी अहिंसा को एक नीति के तौर पर देखते थे। उनके लिए सामाजिक न्याय व किसानों की आर्थिक मुक्ति अहिंसा के अमोल सिद्धांतों से बड़ी थी। उन्होंने अक्सर महसूस किया कि अहिंसा की गांधीवादी व्याख्या अक्सर शोषणकारियों के हितों की रक्षा का औजार बन जाती है। सहजानंद ने कहा किसान स्वभावतः अहिंसक होते हैं परंतु आवश्यकता पड़ने पर उन्होंने किसानों को लाठी(डंडा कल्ट) उठाने के लिए प्रेरित

निष्कर्ष

इस अध्ययन का प्रमुख निष्कर्ष यह है कि गांधी और स्वामी सहजानन्द सरस्वती के नेतृत्व को परस्पर विरोधी दृष्टिकोण के रूप में देखने के बजाय भारतीय कृषक आंदोलन की दो पूरक धाराओं के रूप में समझना अधिक उपयुक्त है। गांधी ने किसान आंदोलनों को राष्ट्रीय वैधता, नैतिक आधार और लोकतांत्रिक स्वरूप प्रदान किया, जबकि स्वामी सहजानन्द

ने किसान आंदोलन को संगठनात्मक शक्ति, वैचारिक स्पष्टता और अधिकार-आधारित दिशा दी। इन दोनों नेतृत्व प्रतिमानों ने मिलकर भारतीय कृषक आंदोलन के स्वरूप और विकास को गहराई से प्रभावित किया।

प्रस्तुत शोध-पत्र का मौलिक योगदान यह है कि इसमें गांधी और स्वामी सहजानन्द सरस्वती के कृषक नेतृत्व का तुलनात्मक विश्लेषण केवल ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर नहीं, बल्कि कृषक अवधारणा, नेतृत्व की प्रकृति, संगठनात्मक दृष्टिकोण, संघर्ष की रणनीति, भूमि संबंधी विचार तथा भारतीय कृषक आंदोलन पर उनके दीर्घकालिक प्रभाव जैसे विश्लेषणात्मक आयामों के आधार पर किया गया है। इस दृष्टिकोण से यह अध्ययन भारतीय कृषक आंदोलन के इतिहास को समझने के लिए एक समग्र विश्लेषणात्मक रूपरेखा प्रस्तुत करता है।

समकालीन भारत में कृषि संकट, किसानों की आय, भूमि संबंधी विवाद, कृषि सुधार तथा किसान आंदोलनों से संबंधित प्रश्नों के संदर्भ में भी यह अध्ययन महत्वपूर्ण है। गांधी की नैतिक राजनीति और स्वामी सहजानन्द की अधिकार-आधारित किसान राजनीति आज भी लोकतांत्रिक किसान आंदोलनों के लिए उपयोगी वैचारिक आधार प्रस्तुत करती हैं। अतः भारतीय कृषक आंदोलन के इतिहास तथा वर्तमान किसान राजनीति को समझने के लिए इन दोनों नेताओं के कृषक नेतृत्व का संतुलित एवं तुलनात्मक अध्ययन अत्यंत आवश्यक है।

अंततः कहा जा सकता है कि भारतीय कृषक आंदोलन की ऐतिहासिक यात्रा गांधी के नैतिक-राष्ट्रीय नेतृत्व और स्वामी सहजानन्द सरस्वती के संगठनात्मक एवं संघर्षशील नेतृत्व—दोनों के संयुक्त योगदान से निर्मित हुई है। इन दोनों नेतृत्व प्रतिमानों का समन्वित अध्ययन न केवल भारतीय इतिहासलेखन को समृद्ध करता है, बल्कि समकालीन कृषि एवं किसान विमर्श को भी एक व्यापक ऐतिहासिक दृष्टि प्रदान करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. चंद्र, विपिन: द राज एण्ड ग्रोथ ऑफ इकोनॉमिक नेशनलिज्म इन इण्डिया, पीपुल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ 34-47
2. वही, पृ 33-47
3. सरकार, सुमित: आधुनिक भारत (1885-1947), मैकमिलन इण्डिया, 1989, पृ 288-306
4. धनगरे, डी एन: पीजेंट मूवमेंट इन इण्डिया (1920-1950), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1983, पृ 1-18
5. ब्राउन, एम ज्यूडिथ: गांधी प्रिंटर ऑफ होप, न्यू हेवन, येल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1989, पृ 61-89
6. हाउसर, वाल्टर: द बिहार प्रोविन्सियल किसान सभा (1929-1942); एक स्टडी ऑफ इंडियन पीजेंट मूवमेंट, पीएचडी डिजर्टेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो, 1961
7. गांधी, एम के: माए एक्सपेरिमेंट विद ट्रुथ, एन ऑटोबायोग्राफी, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, पृ 451-453
8. प्रसाद, राजेन्द्र: सत्याग्रह इन चम्पारण, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस अहमदाबाद, पृ 190
9. चंद्र, विपिन: इण्डिया स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस (1857-1947), पेंगुइन बुक्स पृ 215-218
10. कुशवाहा, सुभाष चंद्र: अवध का किसान विद्रोह (1920 से 1922ई०), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2025, पृ
11. कलेक्टर वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी- हरिजन लेख संग्रह
12. सरस्वती, स्वामी सहजानन्द: मेरा जीवन संघर्ष, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, पृ 226-229
13. गांधी, एम के: हिन्द स्वराज, प्रभात प्रकाशन, ..., 1909
14. सरस्वती, स्वामी सहजानन्द: मेरा जीवन संघर्ष, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, पृ 1-106

15. अब क्या हो, स्वामी सहजानन्द स्मृति केन्द्र, गाजीपुर के मुख्य पृष्ठ से उद्धृत
16. सरस्वती, स्वामी सहजानन्द: मेरा जीवन संघर्ष, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, पृ
17. वही, पृ 173
18. वही, पृ 182-183
19. हाउसर, वाल्टर: द बिहार प्रोविन्सियल किसान सभा (1929-1942); एक स्टडी ऑफ इंडियन पीजेंट मूवमेंट, पीएचडी डिजिटेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो, 1961
20. सरस्वती, स्वामी सहजानन्द: मेरा जीवन संघर्ष, पृ 260×
21. शर्मा, राघव शरण: स्वामी सहजानन्द सरस्वती रचनावली, खण्ड 2 (किसानों के दावे और कार्यक्रम का खरीता), प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2010
22. पूर्वोद्धृत, 13
23. शर्मा, राघव शरण: स्वामी सहजानन्द सरस्वती रचनावली, खण्ड 6, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2010
24. किसान क्या करें
25. सरस्वती, स्वामी सहजानन्द: गीता हृदय, श्री स्वामी सहजानन्द सरस्वती स्मारक न्यास, बक्सर, भोजपुर, पृ 54-94
26. किसान- मजदूर राज्य



Copyright & License:

© Authors retain the copyright of this article. This work is published under the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0), permitting unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.